2. संत कबीर

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति–काल को 'स्वर्ण युग' नाम से जाना जाता है, क्योंकि इस काल के कवियों की वाणी में केवल लोकमंगल की भावना मात्र थी। इन्होंने सामाजिक मूल्यों को पुनर्गठित करते हुए जन कल्याण के लिए जो अमूल्य वैचारिक एवं साहित्यिक योगदान दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। एसे स्वर्णयुग कहे जानेवाले भक्ति–काल की निर्गुण–भक्ति धारा के अंतर्गत ज्ञान–मार्गी शाखा के प्रमुख कवि एवं प्रवर्तक संत कबीर को माना जाता है। संत कबीर के जन्म और मृत्यु को लेकर विद्वानों में अलग–अलग मतभेद पाए जाते हैं। अनेक तर्क वितर्क के बाद विद्वानों के अनुमान के अनुसार संत कबीर का जन्म ई.स.1398 (संवत् 1455) और मृत्यु ई.स.1518 (संवत् 1575) में काशी के पास मगहर में मानी जाती है।

किवदंती के अनुसार संत कबीर का जन्म एक हिंदू विधवा ब्राह्मणी के कोक से हुआ था, जिसने लोकलाज के कारण उस नवजात शिशु को लहरतारा नामक तालाब के पास छोड़ दिया था। वहाँ से नीमा और नीरू नामक इस्लाम दांपत्य जा रहे थे, जो निसंतान थे। अतः उन्होंने उस नवजात शिशु को उठाकर अपने पुत्रवत उसका पालन–पोषण किया। कबीर जाति के जुलाहा थे। कबीर की शादी बनखंडी वैरागी की कन्या लोई के साथ हुई थी, जो काफी सुंदर और पति परायण महिला थी। उनसे कमाल और कमाली नामक दो बच्चों का जन्म हुआ। कबीर बचपन से ही साधु संतों की संगति में आए परिणाम स्वरूप उन्हें आत्मज्ञान मिला। कबीर साहित्य के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उनके गुरु का नाम स्वामी रामानंद था।

कबीर ने निर्गुण ईश्वर की उपासना की है। उनके अनुसार ईश्वर निर्गुण निराकार है, उसका न कोई रंग है, न रूप है,न आकार है, अपितु वह इस सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है। वह पुष्प की गंद की तरह है जिसे देखा नहीं जा सकता केवल अनुभूति ली जा सकती है। इस बात को लेकर कबीर ने कहा भी है कि,

"जाका मुंह माथा नाही, नाही रूप अरूप।
पुहुप गंध ते पातरा, ऐसा तत् अनूप।।"

कबीर ने अपनी निर्गुण–भक्ति के माध्यम से समाज में प्रचलित धार्मिक पाखंड, सांप्रदायिकता, जाति–पांति एवं छुआछूत की भावना, ऊंच–नीचता,

कर्मकांड, अनिष्ट रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। समाज में फैली विविध विषमताओं से ऊपर उठकर मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना करने का प्रयास किया। खासकर तत्कालीन हिंदू–मुस्लिम धर्म में चल रहे धार्मिक भाह्याडम्बरों का तथा अंधविश्वासों का विरोध कर समाज में समता और मानवता की स्थापना करने का प्रयास किया है। नाम की महिमा, गुरु का महत्व, माया से सावधानता धार्मिक बाह्याडम्बरों के भेदभावों पर प्रहार, जाति–पांति का विरोध आदि उनके काव्य की विशेषताएं हैं। महात्मा कबीर परम संतोषी, उदार, स्वतंत्रचेता, निर्भीक, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के उपासक, मानवता के पुजारी, नवीन क्रांति के जनक, दार्शनिक, अध्यात्म के अन्वेषक, आलोचक, युगदृष्ठा कवि तथा क्रांतिकारी सुधारक थे। कहा जाता है कि अपने व्यवसाय की अपेक्षा समाज सुधार की ओर उनका अधिक ध्यान था। वे जो कपड़ा बुनकर बाजार बेचने जाते थे उसे प्रायः साधु के हाथ वितरण करने के लिए छोड़कर खाली हाथ घर लौट आते थे।

कबीर ने अपने युग की सामाजिक विषमता को मिटाने के लिए अपनी आध्यात्मिकता तथा आत्मज्ञान के अनुभव से धार्मिक भाह्याडम्बर को लेकर चलनेवाले, धर्मांधता के कारण हिंसा को बढ़ावा देनेवाले, तथा जाति–पांति के फेरे में फंसे हुए लोगों को जगाने का काम किया है। आज के आधुनिक युग में चारों तरफ बढ़नेवाला अत्याचार, अन्याय, आतंक धार्मिक हिंसा, युद्धजन्य स्थितियाँ, जातीयता, अंधश्रद्धा, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए आज भी हमारे लिए कबीर के विचार महत्वपूर्ण हैं, जो विश्व की सुख–शांति, मानवता और समस्त मानव कल्याण के लिए हैं। इसीलिए आज भी उनके विचार हमारे लिए प्रासंगिक हैं। कबीर के व्यक्तित्व को लेकर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि, "वे सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्तों के सामने निरीह, धूर्त भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी इसीलिए वे युग–प्रवर्तन कर सकें।" ऐसे प्रभावी व्यक्तित्ववाले कबीर आज समस्त मानवता के लिए वंदनीय हैं।

रचनाएँ– कबीर संत पहले और कवि बाद में थे। कविता करना उनके जीवन का उद्देश्य नहीं था, किंतु स्वानुभूति से प्रभावित होकर उनकी वाणी से जो भी निकलता था वह काव्य बन जाता था। उनकी अनुभूतियों के भिन्न–भिन्न विषय होने के कारण उनके काव्य में भी विषयों की विविधता पाई जाती है। कबीर घुमक्कड़ प्रवृत्ति के रहने के कारण उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, आरबी, फारसी, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी आदि विविध प्रकार के

शब्द मिलते हैं। जिसे देखकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी उनकी भाषा को 'खिचड़ी भाषा' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहते हैं। उनकी काव्य–रचना के बारे में कहा जाए, तो कबीर स्वयं अक्षर ज्ञान से वंचित थे। उन्होंने स्वयं कहा है 'मसि कागज छूयो नहीं, कलम गहयो नहिं हाथ।' अतः उनके समग्र वचनों का संकलन उनके शिष्यों में से धर्मदास नामक शिष्य ने 'बीजक' नाम की रचना में संकलित किया है। इस रचना के तीन भाग हैं– 1) साखी, 2) सबद और 3) रमैनी। इन तीन भागों में से 'साखी' में उपदेशात्मक दोहों का, 'सबद' (पदावली) में बाह्याडम्बरों के विरोध के साथ–साथ ब्रह्म, जीव, माया का वर्णन तथा भगवत प्रेम के अनूठे गीतों का संकलन और 'रमैनी' में दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण विविध राग–रागिनियों के आधार पर हुआ है।

यहाँ पाठ्यक्रम के लिए कबीर के दोहों में से गुरु का महत्व, नाम स्मरण का महत्व, विरह की भावना, जाति–पांति का विरोध, बाह्याडम्बरों का विरोध आदि विचारों को व्यक्त करनेवाले दोहों को लिया गया है। जिनमें से **गुरु का महत्व** बताते हुए कबीर ने कहा है कि, सतगुरु की महिमा अनंत है, अपार है। उन्होंने हमारे आंखों से अंधश्रद्धा का एवं माया–मोह का पर्दा निकालकर हमपर उपकार किए हैं, जिसके कारण हमें आनंद रूप परमात्मा के दर्शन होने में सहायता मिली। इसीलिए सतगुरु का हमारे जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अतः गुरु के बारे में कबीर कहते हैं कि, मेरे सामने अगर गुरु और गोविंद दोनों खड़े होंगे, तो सबसे पहले मैं स्वयं को अपने गुरु के चरणों में समर्पित करूंगा, क्योंकि गुरु ने ही मुझे ईश्वर की ओर जाने की राह दिखाई है। कबीर के अनुसार गुरु की भक्ति पाने के लिए भक्तों को सच्चे हृदय से **प्रभु का नामस्मरण** करना आवश्यक है। उनके अनुसार भक्तों को यदि कुछ चिंता रहती है, तो केवल हरि के नाम स्मरण की। राम नाम के अतिरिक्त व्यक्ति जो कुछ चिंतन करता है वह मृत्यु के फंदे के समान है अर्थात वह उसके नाश का कारण बन जाता है। इसीलिए कबीरदास की पांचों ज्ञानेंद्रियों एवं छठे मन ने प्रभु के प्रिय नाम की रट लगा रखी है जिससे कबीर अपनी समाधि अवस्था में पहुंच गए हैं, जहाँ उनका मन राम के अतिरिक्त और कोई नहीं सोचता। अतः वे कहते हैं कि इसी नामस्मरण के कारण मैंने राम रूपी रत्न को प्राप्त किया है। कबीर के अनुसार ईश्वर प्राप्ति का विलंब भक्तों में **विरह की भावना** को उत्पन्न कर देता है और उन्हें पाने की विरह में विरहिणी आत्मा मार्ग में प्रिय (ईश्वर) की प्रतीक्षा में खड़ी आते जाते पथिक से बड़ी उत्कंठा के साथ प्रिय के आगमन का समाचार पूछती है, उसी प्रकार साधक की भी आत्मा गुरु से अपने प्रिय ब्रह्म की चर्चा सुनना चाहती है कि प्रभु से कब भेंट होगी। बहुत समय तक न मिलने के कारण विरहिणी आत्मा कहती है कि हे राम मैं विरहिणी तुम्हारी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रही हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे दर्शन के लिए प्यासे हैं।

मेरा मन तुम्हारे दर्शन के बिना व्याकुल हो रहा है, अतः तुम कब मिलोगे। यहाँ विरहिणी आत्मा की अपने परमात्मा को पाने में हुई विरह दशा व्यक्त हो गई है। कबीर के अनुसार ईश्वर की भक्ति के लिए जाति–पांति, धर्म, संप्रदाय, लिंग, आयु की कोई सीमा नहीं होती। कोई भी अपनी सच्ची भक्ति से ईश्वर की भक्ति कर सकता है। इसीलिए कबीर ने जाति–पांति का विरोध किया है। जाति–पांति के भेदभाव का विरोध करते हुए वे कहते हैं कि ऊँचे कुल में जन्म लेने से कोई भी ऊँचा नहीं होता, ऊँचा होने के लिए उसका कर्म ऊँचा होना चाहिए। जैसे स्वर्ण कितना भी मूल्यवान क्यों न हो स्वर्ण के कलश में अगर शराब भर दी जाए, तो कोई भी संत या साधु उसकी निंदा ही करेगा। इसीलिए कबीर कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति करने के लिए साधु की जाति मत पूछिए, उनका ज्ञान पूछिए। जिस प्रकार तलवार का महत्व होता है, म्यान का नहीं। उसी प्रकार साधु की जाति नहीं बल्कि उनका ज्ञान महत्वपूर्ण होता है उसी ज्ञान से हमें ईश्वर की प्राप्ति होती है। कबीर की दृष्टि से ईश्वर भक्ति में बाह्याडम्बर को कोई स्थान नहीं होता। कबीर ने समाज में चल रहे हैं बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। बाह्याडम्बर करने से ईश्वर की प्राप्ति न होकर हमें नुकसान ही होता है। बाह्याडम्बरों पर प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं कि लोग माला को धारण कर या उसे घुमाते हुए जाप करने का स्वांग करते हैं। भले ही माला हमारे हाथ में फिरती रहे, जीव्हा मुख में भले ही राम नाम का रट लगाती रहे, लेकिन अगर हमारा मन वहाँ न होकर चारों तरफ माया–मोह में भटकता रहे, तो उसे नामस्मरण नहीं कहा जाता। कबीर के अनुसार नामस्मरण तो सच्चे ह्रदय से होना चाहिए। कबीर यह भी कहते हैं कि, भले ही साधक तुलसी के काठ की माला गले में धारण करें या उसे घुमाता रहे लेकिन काठ की माला तो कहती है कि हे साधक!मुझे घुमाने से क्या लाभ अगर तुझे सचमुच घुमाना है, तो माया–मोह की ओर से अपने मन को घुमाकर प्रभु–भक्ति में लगा दे, तब जाकर तुझे प्रभु की प्राप्ति होगी।

गुरु की महत्ता

सतगुरु की महिमा अनँत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावणहार।।1।।
गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारि गुरु अपनै, जिन गोविन्द दियो बताए।।2।।

नामस्मरण की महत्ता

च्यंता तौ हरिं नाँव की, और न चिंता दास।
जे कुछ चित्तवै राम बिन, सोइ काल की हास।।3।।
पंच संगी पिव पिव करैं, छठा जु सुमिरे मन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतन ।।4।।

विरह की भावना

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलैंगे आइ।।5।।
बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम।।6।।

जाति पांति का विरोध

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरै भया,साधू निंदक तोय।।7।।
जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।8।।

बाह्याडम्बरों का विरोध

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो चहु दिसी फिरै, यह तो सुमिरन नाहीं।।9।।
कबीर माला काठ की, कहीं समझावै तोय।
मन न फिरावै अपना, कहाँ फिरावै मोय।।10।।

■■■